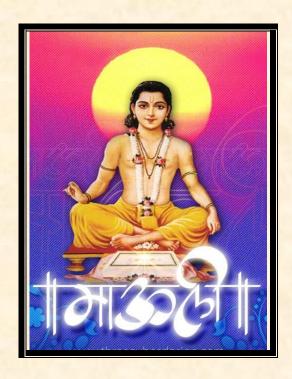
॥ श्रीहरि ॥ ॥ श्री ज्ञानेश्वरी भावार्थदीपिका ॥ ॥ अध्याय नववा ॥

< (2) > < (2) > < (2) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3) > < (3)



\$\racks\rack

हेचि आम्हां करणे काम । बीज वाढवावे नाम ॥

संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर

< (2) < (2) < (2) < (2) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3) < (3)

॥ अध्याय नववा ॥ ॥ राजविद्याराजगुह्ययोगः ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

तरी अवधान एकलें दीजे । मग सर्वसुखासि पात्र होईजे । हें प्रतिज्ञोत्तर माझें । उघड ऐका ॥ १ ॥ परी प्रौढी न बोलों हो जी । तुम्हां सर्वज्ञांच्या समाजीं । देयावें अवधान हे माझी । विनवणी सलगीची ॥ २ ॥ कां जे लळेयांचे लळे सरती । मनोरथांचे मनोरथ पुरती । जरी माहेरें श्रीमंतें होती । तुम्हां ऐसीं ॥ ३ ॥ तुमचे या दिठिवेयाचिये वोलें। सासिन्नले प्रसन्नतेचे मळे। ते साउली देखोनि लोळें । श्रांतु जी मी ॥ ४ ॥ प्रभू तुम्ही सुखामृताचे डोहो । म्हणौनि आम्हीं आपुलिया स्वेच्छा वोलावो लाहों। येथही जरी सलगी करूं बिहों । तरी निवों कें पां ॥ ५ ॥ नातरी बालक बोबडां बोलीं । कां वांकुडा विचुका पाउलीं । ते चोज करूनि माउली । रिझे जेवीं ॥ ६ ॥ तेवीं तुम्हां संतांचा पढियावो । कैसेनि तरी आम्हांवरी हो । या बहुवा आळुकिया जी आहों । सलगी करीत ॥ ७ ॥ वांचूनि माझिये बोलितये योग्यते । सर्वज्ञ भवादृश श्रोते । काय धड्यावरी सारस्वतें । पढों सिकिजे ॥ ८ ॥ अवधारा आवडे तेसणा धुंधुरु । परि महातेजीं न मिरवे काय करूं । अमृताचिया ताटीं वोगरूं । ऐसी रससोय कैंची ॥९॥ हां हो हिमकरासी विंजणें। कीं नादापुढें आइकवणें। लेणियासी लेणें । हें कहीं आथी ॥ १० ॥

सांगा परिमळें काय तुरंबावें । सागरें कवणें ठायीं नाहावें । हें गगनचि आडे आघवें । ऐसा पवाडु कैंचा ॥ ११ ॥ तैसें तुमचें अवधान धाये । आणि तुम्ही म्हणा हें होये । ऐसें वक्तृत्व कवणा आहे । जेणें रिझा तुम्ही ॥ १२ ॥ तरी विश्वप्रगटितिया गभस्ती । काय हातिवेन न कीजे आरती । कां चुळोदकें आपांपती । अर्घ्यु नेदिजे ॥ १३ ॥ प्रभू तुम्ही महेशाचिया मूर्ती । आणि मी दुबळा अर्चितुसे भक्ती । म्हणौनि बोल जर्ही गंगावती । त-ही स्वीकाराल कीं ॥१४॥ बाळक बापाचिये ताटीं रिगे । आणि बापातेंचि जेवऊं लागे । कीं तो संतोषिलेनि वेगें । मुखचि वोढवी ॥ १५ ॥ तैसा मीं जरी तुम्हांप्रती । चावटी करीतसें बाळमती । तरी तुम्ही संतोषिजे ऐसी जाती । प्रेमाची असे ॥ १६ ॥ आणि तेणें आपुलेपणाचेनि मोहें । तुम्हीं संत घेतले असा बहुवें । म्हणौनि केलिये सलगीचा नोहे । आभारु तुम्हां ॥१७॥ अहो तान्हयाचें लागतां झटें । तेणें अधिकचि पान्हा फुटे । रोषें प्रेम दुणवटे । पढियंतयाचेनि ॥ १८ ॥ म्हणौनि मज लेंकुरवाचेनि बोलें । तुमचें कृपाळूपण निदैलें । तें चेइलें ऐसें जी जाणवलें । यालागीं बोलिलो मीं ॥ १९ ॥ ए-हवीं चांदिणें पिकविजत आहे चेपणीं । कीं वारया घापत आहे वाहणी । हां हो गगनासि गंवसणी । घालिजे केवीं ॥२०॥ आइका पाणी वोथिजावें न लगे । नवनीतीं माथुला न रिगे । तेवीं लाजिलें व्याख्यान निगे । देखोनि जयातें ॥ २१ ॥ हें असो शब्दब्रह्म जिये बाजे । शब्द मावळलेया निवांतु निजे ।

<</p>

तो गीतार्थु मर्हाठिया बोलिजे । हा पाडु काई ॥ २२ ॥ परि ऐसियाही मज धिंवसा । तो पुढित याचि येकी आशा । जे धिटींवा करूनि भवादृशां । पढियंतया होआवें ॥ २३ ॥ तरि आतां चंद्रापासोनि निववितें । जें अमृताहृनि जीववितें । तेणें अवधानें कीजो वाढतें । मनोरथां माझिया ॥ २४ ॥ कां जैं दिठिवा तुमचा वरुषे । तैं सकळार्थ सिद्धि मती पिके । ए-हवीं कोंभेला उन्मेषु सुके । जरी उदास तुम्ही ॥ २५ ॥ सहजें तरी अवधारा । वक्तृत्वा अवधानाचा होय चारा । तरी दोंदें पेलती अक्षरां । प्रमेयाचीं ॥ २६ ॥ अर्थ बोलाची वाट पाहे । तेथ अभिप्रावोचि अभिप्रायातें विये । भावाचा फुलौरा होत जाये । मतिवरी ॥ २७ ॥ म्हणौनि संवादाचा सुवावो ढळे । त-ही हृदयाकाश सारस्वतें वोळे । आणि श्रोता दुश्चिता तरि वितुळे । मांडला रसु ॥२८॥ अहो चंद्रकांतु द्रवता कीर होये । परि ते हातवटी चंद्रीं कीं आहे । म्हणौनि वक्ता तो वक्ता नोहे । श्रोतेनिविण ॥ २९ ॥ परि आतां आमुतें गोड करावें । ऐसें तांदुळीं कायसा विनवावें । साइखडियानें काइ प्रार्थावें । सूत्रधारातें ॥ ३० ॥ तो काय बाहुलियांचिया काजा नाचवी । कीं आपुलिये जाणिवेची कळा वाढवी । म्हणौनि आम्हां या ठेवाठेवी । काय काज ॥ ३१ ॥ तवं श्रीगुरू म्हणती काइ जाहलें । हें समस्तही आम्हां पावलें । आतां सांगैं जें निरोपिलें । नारायणें ॥ ३२ ॥ येथ संतोषोनि निवृत्तिदासें। जी जी म्हणौनि उल्हासें। अवधारा श्रीकृष्ण ऐसें । बोलते जाहले ॥ ३३ ॥

<</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>

श्रीभगवानुवाच । इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे । ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १॥

नातरि अर्जुना हें बीज । पुढती सांगिजेल तुज । जें हें अंत:करणींचें गुज । जिवाचिये ॥ ३४ ॥ येणें मानें जीवाचें हिये फोडावें । मग गुज कां पां मज सांगावें । ऐसें कांहीं स्वभावें । कल्पिशी जरी ॥ ३५ ॥ तरी परियेसी गा प्राज्ञा । तूं आस्थेचीच संज्ञा । बोलिलिये गोष्टीची अवज्ञा । नेणसी करूं ॥ ३६ ॥ म्हणौनि गूढपण आपुलें मोडो । वरि न बोलणेंही बोलावें घडो । परि आमुचिये जीवींचें पडो । तुझ्या जीवीं ॥ ३७ ॥ अगा थानीं कीर दूध गूढ । परि थानासीचि नव्हे कीं गोड । म्हणौनि सरो कां सेवितयाची चाड । जरी अनन्यु मिळे ॥३८॥ मुडांहूनि बीज काढिलें। मग निर्वाळलिये भूमीं पेरिलें। तरि तें सांडीविखुरीं गेलें । म्हणों ये कायी ॥ ३९ ॥ यालागीं सुमनु आणि शुद्धमती । जो अनिंदकु अनन्यगती । पैं गा गौप्यही परी तयाप्रती । चावळिजे सुखें ॥ ४० ॥ तरि प्रस्तुत आतां गुणीं इहीं । तूं वांचून आणिक नाहीं । म्हणौनि गुज तरी तुझ्या ठायीं । लपऊं नये ॥ ४१ ॥ आतां किती नावानावा गुज । म्हणतां कानडें वाटेल तुज । तरी ज्ञान सांगेन सहज । विज्ञानेंसी ॥ ४२ ॥ परि तेंचि ऐसेनि निवाडें । जैसें भेसळलें खरें कुडें । मग काढिजे फाडोवाडें । पारखूनियां ॥ ४३ ॥

}><@><@><@><@><@><@><@><@>

कां चांचूचेनि सांडसें । खांडिजे पय पाणी राजहंसें । तुज ज्ञान विज्ञान तैसें । वांटूनि देऊं ॥ ४४ ॥ मग वारयाचिया धारसा । पडिन्नला कोंडा कां नुरेचि जैसा । आणि कणांचा आपैसा । राशिवा जोडे ॥ ४५ ॥ तैसें जें जाणितलेयासाठीं । संसार संसाराचिये गांठीं । लाऊनि बैसवी पाटीं । मोक्षश्रियेच्या ॥ ४६ ॥

<</p>

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<</p>

</

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् । प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २॥

जे जाणणेया आघवेयांच्या गांवीं । गुरुत्वाची आचार्य पदवी । जें सकळ गुह्यांचा गोसावी । पवित्रां रावो ॥ ४७ ॥ आणि धर्माचें निजधाम । तेवींची उत्तमाचें उत्तम । पैं जया येतां नाहीं काम । जन्मांतराचें ॥ ४८ ॥ मोटकें गुरुमुखें उदैजत दिसे । आणि हृदयीं स्वयंभचि असे । प्रत्यक्ष फावों लागे तैसें । आपैसयाचि ॥ ४९ ॥ तेवींचि गा सुखाच्या पाउटीं । चढतां येइजे जयाच्या भेटी । मग भेटल्या कीर मिठी । भोगणेंयाही पडे ॥ ५० ॥ परि भोगाचिये एलीकडिलिये मेरे । चित्त उभें ठेलें सुखा भरे । ऐसें सुलभ आणि सोपारें । वरि परब्रह्म ॥ ५१ ॥ पैं गा आणिकही एक याचें। जें हातां आलिया तरी न वचे। आणि अनुभवितां कांही न वेचे । वरि विटेहि ना ॥ ५२ ॥ येथ जरी तूं तर्किका । ऐसी हन घेसी शंका । ना येवढी वस्तु हे लोकां । उरली केविं पां ॥ ५३ ॥

जे एकोत्तरेयाचिया वाढी । जळितिये आगीं घालिती उडी । ते अनायासें स्वगोडी । सांडिती केवीं ॥ ५४ ॥ तरी पिवत्र आणि रम्य । तेवींचि सुखोपाय गम्य । आणि स्वसुख परम धर्म्य । विर आपणपां जोडे ॥ ५५ ॥ ऐसा अवघाचि हा सुरवाडु आहे । तरी जना हातीं केविं उरों लाहे । हा शंकेचा ठावो कीर होये । पिर न धरावी तुवां ॥५६॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप । अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३॥

पाहे पां दूध पिवत्र आणि गोड । पासी त्वचेचिया पदराआड । पिर तें अव्हेरूनि गोचिड । अशुद्ध काय न सेविती ॥५७॥ कां कमलकंदा आणि दर्दुरीं । नांदणूक एकेचि घरीं । पिर परागु सेविजे भ्रमरीं । येरां चिखलुचि उरे ॥ ५८ ॥ नातरी निदैवाच्या परिवरीं । लोह्या रुतिलया आहाति सहस्रवरी । पिर तेथ बैसोनि उपवासु करी । कां दिरद्वें जिये ॥५९॥ तैसा हृदयामध्यें मी रामु । असतां सर्वसुखाचा आरामु । कीं भ्रांतासी कामु । विषयावरी ॥ ६० ॥ बहु मृगजळ देखोनि डोळां । थुंकिजे अमृताचा गिळितां गळाळा । तोडिला परिसु बांधिला गळां । शुक्तिकालाभें ॥६१॥ तैसी अहंममतेचिये लवडसवडी । मातें न पवतीचि बापुडीं । म्हणौनि जन्ममरणाची दुथडीं । डहुळितें ठेलीं ॥ ६२ ॥ ए-हवीं मी तरी कैसा । मुखाप्रति भानु कां जैसा । कहीं दिसे न दिसे ऐसा । वाणीचा नोहे ॥ ६३ ॥

मया ततिमदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४॥

PACEDACEDACEDACEDACEDACEDACEDACEDACEDACE

माझेया विस्तारलेपणा नांवें । हें जगचि नोहे आघवें जैसें दूध मुरालें स्वभावें । तरि तेंचि दहीं ॥ ६४ ॥ कां बीजिच जाहलें तरु । अथवा भांगारिच अळंकारु । तैसा मज एकाचा विस्तारु । तें हें जग ॥ ६५ ॥ हें अव्यक्तपणें थिजलें । तेंचि मग विश्वाकारें वोथिजलें । तैसें अमूर्तमूर्ति मियां विस्तारलें । त्रैलोक्य जाणें ॥ ६६ ॥ महदादि देहांतें । इयें अशेषेंही भूतें । परी माझ्या ठायीं बिंबतें । जैसें जळीं फेण ॥ ६७ ॥ परि तया फेणांआंतु पाहतां । जेवीं जळ न दिसे पंडुसुता नातरी स्वप्नींची अनेकता । चेइलिया नोहिजे ॥ ६८ ॥ तैसीं भूतें इयें माझ्या ठायीं । बिंबती तयांमाजीं मी नाहीं इया उपपत्ती तुज पाहीं । सांगितलिया मागां ॥ ६९ ॥ म्हणौनि बोलिलिया बोलाचा अतिसो । न कीजे यालागीं हं असो । परी मज आंत पैसो । दिठी तुझी ॥ ७० ॥

> न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५॥

आमुचा प्रकृतीपैलीकडील भावो । जरी कल्पनेवीण लागसी पाहों । तरी मजमाजीं भूतें हेंही वावो । जें मी सर्व म्हणौनी ॥७१॥ ए-हवीं संकल्पाचिये सांजवेळे । नावेक तिमिरेजती बुद्धीचे डोळे । म्हणौनि अखंडितचि परि झांवळे । भूतिभन्न ऐसें देखे ॥७२॥

तेचि संकल्पाची सांज जैं लोपे। तैं अखंडितचि आहे स्वरूपें । जैसें शंका जातखेंवो लोपे । सापपण माळेचें ॥ ७३ ॥ ए-हवीं तरी भूमीआंतूनि स्वयंभ । काय घडेयागाडगेयाचे निघती कोंभ । परि ते कुलालमतीचे गर्भ । उमटले कीं ॥७४॥ नातरी सागरींच्या पाणी । काय तरंगाचिया आहाती खाणी । ते अवांतर करणी । वारयाची नव्हे ॥ ७५ ॥ पाहें पां कापसाच्या पोटीं। काय कापडाची होती पेटी तो वेढितयाचिया दिठी । कापड जाहला ॥ ७६ ॥ जरी सोनें लेणें हौनी घडे । तरी तयाचें सोनेंपण न मोडे । येर अळंकार हे वरचिलीकडे । लेतयाचेनि भावें ॥ ७७ सांगें पडिसादाचीं प्रत्युत्तरें । कां आरिसां जें आविष्करें । तें आपलें कीं साचोकारें । तेथेंचि होतें ॥ ७८ ॥ तैसी इये निर्मळे माझ्या स्वरूपीं । जो भूतभावना आरोपी । तयासी तयाच्या संकल्पीं । भूताभासु असे ॥ ७९ ॥ तेचि कल्पिती प्रकृती पुरे । तरि भूताभासु आधींचि सरे । मग स्वरूप उरे एकसरें । निखळ माझें ॥ ८० ॥ हें असो आंगीं भरिलया भवंडी । जैशा भोंवत दिसती अरडीदरडी । तैशी आपुलिया कल्पना अखंडीं । गमती भूतें ॥८१॥ तेचि कल्पना सांडूनि पाहीं । तरि मी भूतीं भूतें माझिया ठायीं । हें स्वप्नींही परि नाहीं । कल्पावयाजोगें ॥ ८२ ॥ आतां मीच एक भूतांतें धर्ता । अथवा भूतांमाजीं मी असता । या संकल्पसन्निपाता- । आंतुलिया बोलिया ॥ ८३ ॥ म्हणौनि परियेसी गा प्रियोत्तमा । यापरी मी विश्वेंसीं

विश्वात्मा । जो इया लटिकया भूतग्रामा । भाव्यु सदा ॥८४॥ रश्मीचेनि आधारें जैसें । नव्हे तेंचि मृगजळ आभासे । माझ्या ठायीं भूतजात तैसें । आणि मातेंहीं भावी ॥ ८५ ॥ मी ये परीचा भूतभावनु । पिर सर्व भूतांसि अभिन्नु । जैसी प्रभा आणि भानु । एकचि ते ॥ ८६ ॥ हा आमुचा ऐश्वर्ययोगु । तुवां देखिला कीं चांगु । आतां सांगे कांहीं एथ लागु । भूतभेदाचा असे ॥ ८७ ॥ यालागीं मजपासूनि भूतें । आनें नव्हती हें निरुतें । आणि भूतांवेगळिया मातें । कहींच न मनीं हो ॥ ८८ ॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् । तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६॥

पैं गगन जेवढें जैसें । पवनुहि गगनीं तेवढाचि असे ।
सहजें हालिविलया वेगळा दिसे । ए-हवीं गगन तेंचि तो ॥८९॥
तैसें भूतजात माझ्या ठायीं । किल्पजे तरी आभासे कांहीं ।
निर्विकल्पीं तरी नाहीं । तेथ मीचि मी आघवें ॥ ९० ॥
म्हणौनि नाहीं आणि असे । हें कल्पनेचेनि सौरसें ।
जें कल्पनालोपें भ्रंशे । आणि कल्पनेसवें होय ॥ ९१ ॥
तेंचि किल्पतें मुद्दल जाये । तैं असे नाहीं हें कें आहे ।
म्हणौनि पुढती तूं पाहे । हा ऐश्वर्ययोगु ॥ ९२ ॥
ऐसिया प्रतीतिबोधसागरीं । तूं आपणेयातें कल्लोळु एक करीं
। मग जंव पाहासी चराचरीं । तंव तूंचि आहासी ॥ ९३ ॥
या जाणणेयाचा चेवो । तुज आला ना म्हणती देवो ।

तरी आतां द्वैत स्वप्न वावो । जालें कीं ना ॥ ९४ ॥
तरी पुढती जरी विपायें । बुद्धीसी कल्पनेची झोंप ये ।
तरी अभेदबोधु जाये । जैं स्वप्नीं पिडजे ॥ ९५ ॥
म्हणौनि ये निद्रेची वाट मोडे । निखळ उदबोधाचेंचि आपणपें
घडे । ऐसें वर्म जें आहे फुडें । तें दावों आतां ॥९६॥
तरी धनुर्धरा धैर्या । निकें अवधान देईं बा धनंजया ।
पैं सर्व भूतांतें माया । करी हरी गा ॥ ९७ ॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७॥

जिये नांव गा प्रकृती । जे द्विविधा सांगितली तुजप्रती । एकी अष्टधा भेदव्यक्ती । दुजी जीवरूपा ॥ ९८ ॥ हा प्रकृतीविखो आघवा । तुवां मागां परिसिलासी पांडवा । म्हणौनि असो काई सांगावा । पुढतपुढती ॥ ९९ ॥ तरी ये माझिये प्रकृती । महाकल्पाच्या अंतीं । सर्व भूतें अव्यक्तीं । ऐक्यासि येती ॥ १०० ॥ ग्रीष्माच्या अतिरसीं । सबीजें तृणें जैसीं । मागुती भूमीसी । सुलीनें होतीं ॥ १०१ ॥ कां वार्षिये ढेंढें फिटे । जेव्हां शारदीयेचा अनुघडु फुटे । तेव्हां घनजात आटे । गगनींचे गगनीं ॥ १०२ ॥ नातरी आकाशाचे खोंपे । वायु निवांतुचि लोपे । कां तरंगता हारपे । जळीं जेवीं ॥ १०३ ॥ अथवा जागिनलिये वेळे । स्वप्न मनींचें मनीं मावळे ।

तैसें प्राकृत प्रकृतीं मिळे । कल्पक्षयीं ॥ १०४ ॥ मग कल्पादीं पुढती । मीचि सृजीं ऐसी वदंती । तरी इयेविषयीं निरुती । उपपत्ती आइक ॥ १०५ ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

प्रकृतिं स्वामवष्टाभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८॥

तरी हेचि प्रकृती किरीटी । मी स्वकीया सहजें अधिष्ठीं । तेथ तंत्रसमवाय पटी । जेंवि विणावणी दिसे ॥ १०६ ॥ मग तिये विणावणीचेनि आधारें। लहाना चौकडिया पटत्व भरे । तैसीं पंचात्मकें आकारें । प्रकृतीचि होय ॥ १०७ ॥ जैसें विरजणियाचेनि संगें । दूधचि आटेजों लागे । तैशी प्रकृती आंगा रिगे । सृष्टीपणाचिया ॥ १०८ ॥ बीज जळाची जवळीक लाहे । आणि तेंचि शाखोपशाखीं होये । तैसें मज करणें आहे । भूतांचें हें ॥ १०९ ॥ अगा नगर हें रायें केंलें। या म्हणणया साचपण कीर आलें। परि निरुतें पाहतां काय सिणलें । रायाचे हात ॥ ११० ॥ आणि मी प्रकृती अधिष्ठीं तें कैसें । जैसा स्वप्नीं जो असे । मग तोचि प्रवेशे । जागृतावस्थे ॥ १११ ॥ तरी स्वप्नौनि जागृती येतां । काय पाय दुखती पंडुसुता । कीं स्वप्नामाजीं असतां । प्रवासु होय ॥ ११२ ॥ या आघवियाचा अभिप्रावो कायी । जे हें भूतसृष्टीचें कांहीं । मज एकही करणें नाहीं । ऐसाचि अर्थु ॥ ११३ ॥ जैसी रायें अधिष्ठिली प्रजा । व्यापारें आपुलालिया काजा ।

तैसा प्रकृतिसंगु हा माझा । येर करणें तें इयेचें ॥ ११४ ॥ पाहे पां पूर्णचंद्राचिये भेटी । समुद्रीं अपार भरतें दाटी । तेथ चंद्रांसि काय किरीटी । उपखा पडे ॥ ११५ ॥ जड परि जवळिका । लोह चळे तरी चळो कां । तरि कवणु शीणु भ्रामका । सन्निधानाचा ॥ ११६ ॥ किंबहुना यापरी । मी निजप्रकृति अंगिकारीं । आणि भूतसृष्टी एकसरी । प्रसवोंचि लागे ॥ ११७ ॥ जो हा भूतग्रामु आघवा । असे प्रकृतीआधीन पांडवा । जैसी बीजाचिया वेलपालवा । समर्थ भूमी ॥ ११८ ॥ नातरी बाळादिकां वयसा । गोसावी देहसंगु जैसा । अथवा घनावळी आकाशा । वार्षिये जेवीं ॥ ११९ ॥ कां स्वप्नासि कारण निद्रा । तैसी प्रकृती हे नरेंद्रा । या अशेषाहि भूतसमुद्रा । गोसाविणी गा ॥ १२० ॥ स्थावरा आणि जंगमा । स्थूळा अथवा सूक्ष्मा । हे असो भूतग्रामा । प्रकृतिचि मूळ ॥ १२१ ॥ म्हणौनि भूतें हन सृजावीं । कां सृजिलीं प्रतिपाळावीं । इयें करणीं न येती आघवीं । आमुचिया आंगा ॥ १२२ ॥ जळीं चंद्रिकेचिया पसरती वेली । ते वाढी चंद्रें नाहीं वाढिवली । तेविं मातें पावोनि ठेलीं । दूरी कर्में ॥ १२३ ॥

> न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय । उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९॥

आणि सुटलिया सिंधुजळाचा लोटु । न शके धरूं सैंधवाचा घाटु । तेविं सकळ कर्मा मीचि शेवटु । तीं काय बांधती मातें ॥१२४॥ धूम्ररजांची पिंजरीं । वाजितया वायूतें जरी होकारी । कां सूर्यिबंबामाझारीं । आंधारें शिरे ॥ १२५ ॥ हें असो पर्वताचिये हृदयींचें । जेविं पर्जन्यधारास्तव न खोंचें । तेविं कर्मजात प्रकृतीचें । न लगे मज ॥ १२६ ॥ ए-हवीं इये प्रकृतिविकारीं । एकु मीचि असे अवधारीं । परि उदासीनाचिया परी । करीं ना करवीं ॥ १२७ ॥ जैसा दीपु ठेविला परिवरीं । कवणातें नियमी ना निवारी । आणि कवण कवणिये व्यापारीं । राहाटे तेंहि नेणें ॥ १२८ ॥ तो जैसा कां साक्षिभूतु । गृहव्यापारप्रवृत्तिहेतु । तेसा भूतकर्मीं अनासक्तु । मी भूतीं असें ॥ १२९ ॥ हा एकचि अभिप्रावो पुढतपुढती । काय सांगों बहुतां उपपत्ती । येथ एकहेळां सुभद्रापती । येतुलें जाण पां ॥ १३० ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् । हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १०॥

जे लोकचेष्टां समस्तां । जैसा निमित्तमात्र कां सिवता । तैसा जगत्प्रभवीं पंडुसुता । हेतु मी जाणें ॥ १३१ ॥ कां जें मियां अधिष्ठिलिया प्रकृती । होती चराचराचिया संभूती । म्हणौनि मी हेतु हे उपपत्ती । घडे यया ॥ १३२ ॥ आतां येणें उजिवडें निरुतें । न्याहाळीं पां ऐश्वर्ययोगातें । जे माझ्या ठायीं भूतें । परी भूतीं मी नसें ॥ १३३ ॥ अथवा भूतें ना माझ्या ठायीं । आणि भूतांमाजीं मी नाहीं । या खुणा तूं कहीं । चुकों नको ॥ १३४ ॥ हें सर्वस्व आमुचें गूढ । पिर दाविलें तुज उघड । आतां इंद्रियां देऊनि कवाड । हृदयीं भोगीं ॥ १३५ ॥ हा दंशु जंव नये हातां । तंव माझें साचोकारपण पार्था । न संपडे गा सर्वथा । जेविं तुषीं कणु ॥ १३६ ॥ ए-हवीं अनुमानाचेनि पैसें । आवडे कीर कळलें ऐसें । पिर मृगजळाचेनि वोलांशें । काय भूमि तिमे ॥ १३७ ॥ जें जाळ जळीं पांगिलें । तेथ चंद्रविंब दिसे आंतुडलें । पिर थडिये काढूनि झाडिलें । तेव्हां बिंब कें सांगैं ॥ १३८ ॥ तैसें बोलवरी वाचाबळें । वायांचि झकविजती प्रतीतीचें डोळे । मग साचोकारें बोधावेळे । आथि ना होइजे ॥ १३९ ॥

<</p>

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् । परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११॥

किंबहुना भवा बिहाया । आणि साचें चाड आथि जरी मियां । तिर तूं गा उपपत्ती इया । जतन कीजे ॥ १४० ॥ ए-हवीं दिठी वेधली कवळें । तैं चांदिणयातें म्हणे पिंवळें । तेंविं माझ्या स्वरूपीं निर्मळें । देखती दोष ॥ १४१ ॥ नातरी ज्वरें विटाळलें मुख । तें दुधातें म्हणे कडू विख । तेविं अमानुषा मानुष । मानिती मातें ॥ १४२ ॥ म्हणौनि पुढतपुढती धनंजया । झणें विसंबसी या अभिप्राया । जे इया स्थूलहष्टी वायां । जाइजेल गा ॥ १४३ ॥

(2) > 4 (2) >

पैं स्थूलदृष्टी देखती मातें। तेंचि न देखणें जाण निरुतें। जैसें स्वप्नींचेनि अमृतें । अमरा नोहिजे ॥ १४४ ॥ ए-हवीं स्थूलहष्टी मूढ । मातें जाणती कीर हढ । परि तें जाणणेचि जाणणेया आड । रिगोनि ठाके ॥ १४५ ॥ जैसा नक्षत्राचिया आभासा- । साठीं घातु झाला तया हंसा । माजीं रत्नबुद्धीचिया आशा । रिगोनियां ॥ १४६ ॥ सांगैं गंगा या बुद्धी मृगजळ । ठाकोनि आलियाचें कवण फळ । काय सुरतरु म्हणौनि बाबुळ । सेविली करी ॥ १४७ ॥ हार निळयाचाचि दुसरा । या बुद्धी हातु घातला विखारा । कां रत्नें म्हणौनि गारा । वेंचि जेंवीं ॥ १४८ ॥ अथवा निधान हें प्रगटलें । म्हणौनि खदिरांगार खोळे भरिले । कां साउली नेणतां घातलें । कुहा सिंहें ॥ १४९ ॥ तेवीं मी म्हणौनि प्रपंचीं । जिहीं बुडी दिधली कृतनिश्चयाची । तिहीं चंद्रासाठीं जेवीं जळींची । प्रतिभा धरिली ॥ १५० ॥ तैसा कृतनिश्चयो वायां गेला । जैसा कोण्ही एकु कांजी प्याला । मग परिणाम पाहों लागला । अमृताचा ॥ १५१ ॥ तैसें स्थूलाकारी नाशिवंतें । भरंवसा बांधोनि चित्तें । पाहती मज अविनाशातें । तरी कैंचा दिसें ॥ १५२ ॥ आगा काई पश्चिमसमुद्राचिया तटा । निधिजत आहे पूर्विलिया वाटा । कां कोंडा कांडतां सुभटा । कणु आतुडे ॥१५३॥ तैसें विकारलें हें स्थूळ । जाणितले या मी जाणवतसें केवळ । काई फेण पितां जळ । सेविलें होय ॥ १५४ ॥ म्हणौनि मोहिलेंनि मनोधर्में । हेंचि मी मानूनि संभ्रमें ।

<</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$><</p>
\$>

मग येथिंची जियें जन्मकर्में । तियें मजिच म्हणती ॥ १५५ ॥ येतुलेनि अनामा नाम । मज अक्रियासि कर्म । विदेहासि देहधर्म । आरोपिती ॥ १५६ ॥ मज आकारशून्या आकारु । निरुपाधिका उपचारु । मज विधिवर्जिता व्यवहारु । आचारादिक ॥ १५७ ॥ मज वर्णहीना वर्णु । गुणातीतासि गुणु । मज अचरणा चरणु । अपाणिया पाणी ॥ १५८ ॥ मज अमेया मान । सर्वगतासी स्थान । जैसें सेजेमाजीं वन । निदेला देखे ॥ १५९ ॥ तैसें अश्रवणा श्रोत्र । मज अचक्षूसी नेत्र । अगोत्रा गोत्र । अरूपा रूप ॥ १६० ॥ मज अव्यक्तासी व्यक्ती । अनार्तासी आर्ती । स्वयंतृप्ता तृप्ती । भाविती गा ॥ १६१ ॥ मज अनावरणा प्रावरण । भूषणातीतासि भूषण । मज सकळ कारणा कारण । देखती ते ॥ १६२ ॥ मज सहजातें करिती । स्वयंभातें प्रतिष्ठिती । निरंतरातें आव्हानिती । विसर्जिती गा ॥ १६३ ॥ मी सर्वदा स्वतः सिद्धु । तो कीं बाळ तरुण वृद्धु । मज एकरूपा संबंधु । जाणती ऐसे ॥ १६४ ॥ मज अद्वैतासि दुजें। मज अकर्तयासि काजें। मी अभोक्ता कीं भुंजें । ऐसें म्हणती ॥ १६५ ॥ मज अकुळाचें कुळ वानिती । मज नित्याचेनि निधनें शिणती । मज सर्वांतरातें कल्पिती । अरि मित्र गा ॥ १६६ ॥

मी स्वानंदाभिरामु । तया मज अनेक सुखांचा कामु ।
आघवाचि मी असे समु । कीं म्हणती एकदेशी ॥ १६७ ॥
मी आत्मा एक चराचरीं । म्हणती एकाचा कैंपक्ष करीं ।
आणि कोपोनि एकातें मारीं । हेंचि वाढिवती ॥ १६८ ॥
किंबहुना ऐसें समस्त । जे हे मानुषधर्म प्राकृत ।
तयाचि नांव मी ऐसें विपरीत । ज्ञान तयांचें ॥ १६९ ॥
जंव आकारु एक पुढां देखती । तंव हा देव येणें भावें भजती । मग तोचि विघडिलया टािकती । नाहीं म्हणौनि ॥ १७० ॥
मातें येणें येणें प्रकारें । जाणती मनुष्य ऐसेनि आकारें ।
म्हणौनि ज्ञानिच तें आंधारें । ज्ञानािस करी ॥ १७१ ॥

<u>|<\}><\}><\}><\\$><\\$><\\$><\\$><\\$><\\$><\\$></u>

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः । राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२॥

यालागीं जन्मलेचि ते मोघ । जैसें वार्षियेवीण मेघ । कां मृगजळाचे तरंग । दुरूनीचि पाहावें ॥ १७२ ॥ अथवा कोल्हेरीचे असिवार । नातरी वोडंबरीचे अळंकार । कीं गंधर्वनगरीचे आवार । आभासती कां ॥ १७३ ॥ साबरी वाढिन्नल्या सरळा । वरी फळ ना आंतु पोकळा । कां स्तन जाले गळां । शेळिये जैसें ॥ १७४ ॥ तैसें मूर्खाचें तया जियालें । आणि धिग् कर्म तयांचें निपजलें । जैसें साबरी फळ आलें । घेपे ना दीजे ॥ १७५ ॥ मग जें कांहीं ते पढिन्नले । तें मर्कटें नारळ तोडिले । कां आंधळ्या हातीं पडिलें । मोतीं जैसें ॥ १७६ ॥

किंबहुना तयांचीं शास्त्रें । जैशीं कुमारीं हातीं दिधलीं शस्त्रें । कां अशौच्या मंत्रें । बीजें कथिलीं ॥ १७७ ॥ तैसें ज्ञानजात तयां । आणि जें कांहीं आचरलें गा धनंजया । तें आघवेंचि गेलें वायां । जें चित्तहीन ॥ १७८ ॥ पैं तमोगुणाची राक्षसी । जे सद्बुद्धीतें ग्रासी । विवेकाचा ठावोचि पुसी । निशाचरी जे ॥ १७९ ॥ तिये प्रकृती वरपडे जाले । म्हणौनि चिंतेचेनि कपोलें गेले । वरि तामसीयेचिये पडिले । मुखामाजीं ॥ १८० ॥ जेथ आशेचिये लाळे । आंतु हिंसा जीभ लोळे । तेवींचि असंतोषाचे चाकळे । अखंड चघळी ॥ १८१ ॥ जे अनर्थाचे कानवेरी । आवाळुवें चाटीत निघे बाहेरी । जे प्रमादपर्वतींची दरी । सदाचि मातली ॥ १८२ ॥ जेथ द्वेषाचिया दाढा । खसखसां ज्ञानाचा करिती रगडा । जे अगस्ती गवसणी मूढां । स्थूल बुद्धि ॥ १८३ ॥ ऐसे आसुरिये प्रकृतीचे तोंडीं । जे जाले गा भूतोंडीं । ते बुडोनि गेले कुंडीं । व्यामोहाच्या ॥ १८४ ॥ एवं तमाचिये पडिले गर्ते । न पविजतीचि विचाराचेनि हाते । हें असो ते गेले जेथें । ते शुद्धीचि नाहीं ॥ १८५ ॥ म्हणौनि असोतु इयें वायाणीं । कायशीं मूर्खांचीं बोलणीं । वायां वाढिवतां वाणी । शिणेल हन ॥ १८६ ॥ ऐसें बोलिलें देवें । तेथ जी जी म्हणितलें पांडवें । आइकें जेथ वाचा विसवे । ते साधुकथा ॥ १८७ ॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतीमाश्रिताः । भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३॥

तरी जयाचे चोखटे मानसीं । मी होऊनि असें क्षेत्रसंन्यासी । जया निजेलियातें उपासी । वैराग्य गा ॥ १८८ ॥ जयाचिया आस्थेचिया सद्भावा । आंतु धर्म करी राणिवा । जयाचें मन ओलावा । विवेकासी ॥ १८९ ॥ जे ज्ञानगंगे नाहाले । पूर्णता जेऊनि धाले । जे शांतीसी आले । पालव नवे ॥ १९० ॥ जे परिणामा निघाले कोंभ । जे धैर्यमंडपाचे स्तंभ । जे आनंदसमुद्रीं कुंभ । चुबकळोनि भरिले ॥ १९१ ॥ जया भक्तीची येतुली प्राप्ती । जे कैवल्यातें परौतें सर म्हणती । जयांचिये लीलेमाजीं नीति । जियाली दिसे ॥१९२॥ जे आघवांचि करणीं । लेईले शांतीचीं लेणीं । जयांचें चित्त गवसणी । व्यापका मज ॥ १९३ ॥ ऐसें जे महानुभाव । दैविये प्रकृतीचें दैव । जे जाणोनियां सर्व । स्वरूप माझें ॥ १९४ ॥ मग वाढतेनि प्रेमें । मातें भजती जे महात्मे । परि दुजेपण मनोधर्में । शिवतलें नाहीं ॥ १९५ ॥ ऐसें मीच होऊनि पांडवा । करिती माझी सेवा । परि नवलावो तो सांगावा । असे आइक ॥ १९६ ॥

सततं किर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः । नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४॥

तरी कीर्तनाचेनि नटनाचे । नाशिले व्यवसाय प्रायश्चित्ताचे । जें नामचि नाहीं पापाचें । ऐसें केलें ॥ १९७ ॥ यमदमा अवकळा आणिली । तीर्थें ठायावरूनि उठविलीं । यमलोकींची खुंटिली । राहाटी आघवी ॥ १९८ ॥ यम् म्हणे काय यमावें । दम् म्हणे कवणातें दमावें । तीर्थें म्हणतीं काय खावें । दोष ओखदासि नाहीं ॥ १९९ ॥ ऐसें माझेनि नामघोषें । नाहींचि करिती विश्वाचीं दुःखें । अवधें जगचि महासुखें । दुमदुमित भरलें ॥ २०० ॥ ते पाहांटेवीण पाहावित । अमृतेंवीण जीववित । योगेंवीण दावित । कैवल्य डोळां ॥ २०१ ॥ परी राया रंका पाड धरूं । नेणती सानेयां थोरां कडसणी करूं । एकसरें आनंदाचें आवारु । होत जगा ॥ २०२ ॥ कहीं एकाधेनि वैकुंठा जावें। तें तिहीं वैकुंठचि केलें आघवें। ऐसें नामघोषगौरवें । धवळलें विश्व ॥ २०३ ॥ तेजें सूर्य तैसें सोज्वळ । परि तोहि अस्तवे हें किडाळ । चंद्र संपूर्ण एखादे वेळ । हे सदा पुरते ॥ २०४ ॥ मेघ उदार परी वोसरे । म्हणौनि उपमेसी न पुरे । हे निःशंकपणें सपांखरे । पंचानन ॥ २०५ ॥ जयांचे वाचेपुढां भोजें। नाम नाचत असे माझें। जें जन्मसहस्रीं वोळगिजे । एकवेळ यावया ॥ २०६ ॥ तो मी वैकुंठीं नसें । वेळु एक भानुबिंबींही न दिसें । वरी योगियांचींही मानसें । उमरडोनि जाय ॥ २०७ ॥ परी तयांपाशीं पांडवा । मी हारपला गिंवसावा ।

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<</p>
<</p>

</

जेथ नामघोषु बरवा । करिती माझा ॥ २०८ ॥ कैसे माझ्या गुणीं धाले । देशकालातें विसरले । कीर्तनें सुखी झाले । आपणपांचि ॥ २०९ ॥ कृष्ण विष्णु हरि गोविंद । या नामाचे निखळ प्रबंध । माजी आत्मचर्चा विशद । उदंड गाती ॥ २१० ॥ हे बहु असो यापरी । कीर्तित मातें अवधारीं । एक विचरती चराचरीं । पंडुकुमरा ॥ २११ ॥ मग आणिक ते अर्जुना । साविया बहुवा जतना । पंचप्राण मना । पाढाऊ घेउनी ॥ २१२ ॥ बाहेरी यमनियमांची कांटी लाविली । आंतु वज्रासनाची पौळी पन्नासिली । वरी प्राणायामाचीं मांडिलीं । वाहातीं यंत्रें ॥२१३॥ तेथ उल्हाट शक्तीचेनि उजिवडें । मन पवनाचेनि सुरवाडें । सतरावियेचें पाणियाडें । बळियाविलें ॥ २१४ ॥ तेव्हां प्रत्याहारें ख्याती केली । विकारांची सिपली बोहलीं । इंद्रियें बांधोनि आणिली । हृदयाआंतु ॥ २१५ ॥ तंव धारणावारु दाटिन्नले । महाभूतांतें एकवटिलें । मग चतुरंग सैन्य निवटिलें । संकल्पाचें ॥ २१६ ॥ तयावरी जैत रे जैत । म्हणौनि ध्यानाचें निशाण वाजत । दिसे तन्मयाचें झळकत । एकछत्र ॥ २१७ ॥ पाठीं समाधीश्रियेचा अशेखा । आत्मानुभव राज्यसुखा । पट्टाभिषेकु देखा । समरसें जाहला ॥ २१८ ॥ ऐसें हें गहन । अर्जुना माझें भजन । आतां ऐकें सांगेन । जे करिती एक ॥ २१९ ॥

तरी दोन्ही पालववेरी । जैसा एक तंतू अंबरीं । तैसा मीवांचूनि चराचरीं । जाणती ना ॥ २२० ॥ आदि ब्रह्मा करूनी । शेवटीं मशक धरूनी । माजी समस्त हें जाणोनि । स्वरूप माझें ॥ २२१ ॥ मग वाड धाकुटें न म्हणती । सजीव निर्जीव नेणती । देखिलिये वस्तु उजू लुंटिती । मीचि म्हणौनि ॥ २२२ ॥ आपुलें उत्तमत्व नाठवे । पुढील योग्यायोग्य नेणवे । एकसरें व्यक्तिमात्राचेनि नांवें । नमूंचि आवडे ॥ २२३ ॥ जैसें उंचीं उदक पडिलें । ते तळवटवरी ये उगेलें । तैसें निमजे भूतजात देखिलें । ऐसा स्वभावोचि तयांचा ॥२२४॥ कां फळलिया तरूची शाखा । सहजें भूमीसी उतरे देखा । तैसें जीवमात्रां अशेखां । खालावती ते ॥ २२५ ॥ अखंड अगर्वता होऊनि असती । तयांची विनय हेचि संपत्ती । जे जयजय मंत्रें अर्पिती । माझ्याचि ठायीं ॥ २२६ ॥ निमतां मानापमान गळाले । म्हणौनि अवचितां मीचि जहाले । ऐसे निरंतर मिसळले । उपासिती ॥ २२७ ॥ अर्जुना हे गुरुवी भक्ती । सांगितली तुजप्रती । आतां ज्ञानयज्ञें यजिती । ते भक्त आइकें ॥ २२८ ॥ परि भजन करिती हातवटी । तूं जाणत आहासि किरीटी । जे मागां इया गोष्टी । केलिया आम्हीं ॥ २२९ ॥ तंव आथि जी अर्जुन म्हणे । हें दैविकिया प्रसादाचें करणें । तरि काय अमृताचें आरोगणें । पुरे म्हणवे ॥ २३० ॥ या बोला श्रीअनंतें । लागटा देखिलें तयांतें ।

<</p>

<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

</

कीं सुखावलेनि चित्तें । डोलतु असे ॥ २३१ ॥ म्हणे भलें केलें पार्था । ए-हवीं हा अनवसरु सर्वथा । परि बोलवितसे आस्था । तुझी मातें ॥ २३२ ॥ तंव अर्जुन म्हणे हे कायी । चकोरेंवीण चांदणेंचि नाहीं । जगचि निवविजे हा तयाच्या ठायीं । स्वभावो कीं जी ॥२३३॥ येरें चकोरें तिये आपुलिये चाडे । चांचू करिती चंद्राकडे । तेवीं आम्ही विनवं तें थोकडें । देवो कृपासिंधु ॥ २३४ ॥ जी मेघु आपुलिये प्रौढी । जगाची आर्ती दवडी । वांचूनि चातकाची ताहान केवढी । तो वर्षावो पाहुनी ॥२३५॥ परि चुळा एकाचिया चाडे । जेवीं गंगेतेंचि ठाकणें पडे । तेवीं आर्त बहु कां थोडे । तरी सांगावें देवें ॥ २३६ ॥ तेथें देवें म्हणितलें राहें । जो संतोषु आम्हां जाहला आहे । तयावरी स्तुति साहे । ऐसें उरलें नाहीं ॥ २३७ ॥ पैं परिसत् आहासि निकियापरी । तेंचि वक्तृत्वा वर्हाडीक करी । ऐसें पुरस्करोनि श्रीहरी । आदिरलें बोलों ॥ २३८ ॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते । एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५॥

तरी ज्ञानयज्ञु तो एवं रूपु । तथ आदिसंकल्पु हा यूपु । महाभूतें मंडपु । भेदु तो पशु ॥ २३९ ॥ मग पांचांचे जे विशेष गुण । अथवा इंद्रियें आणि प्राण । हेचि यज्ञोपचारभरण । अज्ञान घृत ॥ २४० ॥ तथ मनबुद्धीचिया कुंडा । आंतु ज्ञानाग्नि धडफुडा ।

साम्य तेचि सुहाडा । वेदिका जाणें ॥ २४१ ॥ सविवेकमतिपाटव । तेचि मंत्र विद्यागौरव । शांति स्रुक्-स्रुव । जीवु यज्वा ॥ २४२ ॥ तो प्रतीतीचेनि पात्रें । विवेकमहामंत्रें । ज्ञानाग्निहोत्रें। भेदु नाशी ॥ २४३॥ तेथ अज्ञान सरोनि जाये । आणि यजिता यजन हें ठाये । आत्मसमरसीं न्हाये । अवभृथीं जेव्हां ॥ २४४ ॥ तेव्हां भूतें विषय करणें । हें वेगळालें कांहीं न म्हणे । आघवें एकचि ऐसें जाणें। आत्मबुद्धि॥ २४५॥ जैसा चेइला तो अर्जुना । म्हणे स्वप्नींची हे विचित्र सेना । मीचि जाहालों होतों ना । निद्रावशें ॥ २४६ ॥ आतां सेना ते सेना नव्हे । हें मीच एक आघवें । ऐसें एकत्वें मानवें । विश्व तयां ॥ २४७ ॥ मग तो जीवु हे भाष सरे । आब्रह्म परमात्मबोधें भरे । ऐसे भजती ज्ञानाध्वरें । एकत्वें येणें ॥ २४८ ॥ अथवा अनादि हें अनेक । जें आनासारिखें एका एक । आणि नामरूपादिक । तेंही विषम ॥ २४९ ॥ म्हणौनि विश्व भिन्न । परि न भेदे तयाचें ज्ञान । जैसे अवयव तरि आन आन । परि एकेचि देहींचे ॥ २५० ॥ कां शाखा सानिया थोरा । परि आहाति एकाचिया तरुवरा । बहु रिम परि दिनकरा । एकाचे जेवीं ॥ २५१ ॥ तेवीं नानाविधा व्यक्ती । आनानें नामें आनानी वृत्ती । ऐसें जाणती भेदलां भूतीं । अभेदा मातें ॥ २५२ ॥

(\$) < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$) > < \$)

येणें वेगळालेपणें पांडवा । करिती ज्ञानयज्ञु बरवा । जे न भेदती जाणिवा । जाणते म्हणौनि ॥ २५३ ॥ ना तरी जेधवां जिये ठायीं । देखती कां जें जें कांहीं । तें मीवांचूनि नाहीं । ऐसाचि बोधु ॥ २५४ ॥ पाहें पां बुडबुडा जेउता जाये । तेउतें जळिच एक तया आहे । मग विरे अथवा राहे । त-ही जळाचिमाजीं ॥ २५५ ॥ कां पवनें परमाणु उचलले । ते पृथ्वीपणावेगळे नाहीं केले । आणि माघौते जरी पडले । तरी पृथ्वीचिवरी ॥ २५६ ॥ तैसें भलतेथ भलतेणें भावें । भलतेंही हो अथवा नोहावें । परि तें मी ऐसें आघवें । होऊनि ठेले ॥ २५७ ॥ अगा हे जेव्हडी माझी व्याप्ती । तेव्हडीचि तयांची प्रतीती । ऐसें बहुधाकारीं वर्तती । बहुचि हौनि ॥ २५८ ॥ हें भानुबिंब आवडे तया । सन्मुख जैसें धनंजया । तैसे ते विश्वा यया । समोर सदा ॥ २५९ ॥ अगा तयांचिया ज्ञाना । पाठी पोट नाहीं अर्जुना । वायु जैसा गगना । सर्वांगीं असे ॥ २६० ॥ तैसा मी जेतुला आघवा । तेंचि तुक तयांचिया सद्भावा । तरी न करितां पांडवा । भजन जहालें ॥ २६१ ॥ ए-हवीं तरी सकळ मीचि आहें । तरी कवणीं कें उपासिला नोहें । एथ एकें जाणणेवीण ठाये । अप्राप्तासी ॥ २६२ ॥ परि तें असो येणें उचितें । ज्ञानयज्ञें यजितसांते । उपासिती मातें । ते सांगितलें ॥ २६३ ॥

अखंड सकळ हें सकळां मुखीं । सहज अर्पत असे मज एकीं । कीं नेणणें यासाठीं मूर्खीं । न पविजेचि मातें ॥ २६४ ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् । मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६॥

तोचि जाणिवेचा जरी उदयो होये । तरी मुद्दल वेदु मीचि आहें । आणि तो विधानातें जया विये । तो क्रतुही मीचि ॥२६५॥ मग तया कर्मापासूनि बरवा । जो सांगोपांगु आघवा । यज्ञु प्रकटे पांडवा । तोही मी गा ॥ २६६ ॥ स्वाहा मी स्वधा । सोमादि औषधी विविधा । आज्य मी समिधा । मंत्रु मी हवि ॥ २६७ ॥ होता मी हवन कीजे । तेथ अग्नी तो स्वरूप माझें । आणि हुतक वस्तु जें जें । तेही मीचि ॥ २६८ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः । वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७॥

पैं जयाचेनि अंगसंगें । इये प्रकृतीस्तव अष्टांगें । जन्म पाविजत असे जगें । तो पिता मी गा ॥ २६९ ॥ अर्धनारीनटेश्वरीं । जो पुरुष तोचि नारी । तेवीं मी चराचरीं । माताही होय ॥ २७० ॥ आणि जाहाले जग जेथ राहे । जेणें जीवित वाढत आहे । तें मी वांचूनि नोहे । आन निरुतें ॥ २७१ ॥ इयें प्रकृतिपुरुषें दोन्हीं । उपजलीं जयाचिया अमनमनीं । तो पितामह त्रिभुवनीं । विश्वाचा मी ॥ २७२ ॥ आणि आघवेया जाणणेयाचिया वाटा । जया गांवा येती गा सुभटा । वेदांचिया चोहटां । वेद्य जें म्हणिजे ॥ २७३ ॥ जेथ नानामतां बुझावणी जाहाली । एकमेकां शास्त्रांची अनोळखी फिटली । चुकलीं ज्ञानें जेथ मिळों आलीं । जें पवित्र म्हणिजे ॥२७४॥

पें ब्रह्मबीजा जाहला अंकुरु । घोषध्वनीनादाकारु । तयाचें गा भुवन जो ॐकारु । तोही मी गा ॥ २७५ ॥ जया ॐकाराचिये कुशीं । अक्षरें होतीं औमकारेंसीं । जियें उपजत वेदेंसीं । उठलीं तिन्हीं ॥ २७६ ॥ म्हणौनि ऋग्यजुःसामु । हे तीन्ही म्हणे मी आत्मारामु । एवं मीचि कुलक्रमु । शब्दब्रह्माचा ॥ २७७ ॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् । प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८॥

हें चराचर आघवें । जिये प्रकृती आंत सांठवे । ते शिणली जेथ विसवे । ते परमगती मी ॥ २७८ ॥ आणि जयाचेनि प्रकृति जिये । जेणें अधिष्ठिली विश्व विये । जो येऊनि प्रकृती इये । गुणातें भोगी ॥ २७९ ॥ तो विश्वश्रियेचा भर्ता । मीचि गा एथ पंडुसुता । मी गोसावी असे समस्ता । त्रैलोक्याचा ॥ २८० ॥ आकाशें सर्वत्र वसावें । वायूनें नावभरी उगे नसावें । पावकें दाहावें । वर्षावें जळें ॥ २८१ ॥

पर्वतीं बैसका न संडावी । समुद्रीं रेखा नोलांडावी । पृथ्वीया भूतें वाहावीं । हे आज्ञा माझी ॥ २८२ ॥ म्यां बोलिविल्या वेदु बोले । म्यां चालिवल्या सूर्यु चाले । म्यां हालविल्या प्राणु हाले । जो जगातें चाळिता ॥ २८३ ॥ मियांचि नियमिलासांता । काळु ग्रासितसे भूतां । इयें म्हणियागतें पंडुसुता । सकळें जयाचीं ॥ २८४ ॥ जो ऐसा समर्थु । तो मी जगाचा नाथु । आणि गगना{ऐ}सा साक्षिभूतु । तोही मीचि ॥ २८५ ॥ इहीं नामरूपीं आघवा । जो भरला असे पांडवा । आणि नामरूपांचाही वोल्हावा । आपणचि जो ॥ २८६ ॥ जैसे जळाचे कल्लोळ । आणि कल्लोळीं आथी जळ । ऐसेनि वसवीतसे सकळ । तो निवासु मी ॥ २८७ ॥ जो मज होय अनन्य शरण । त्याचें निवारी मी जन्ममरण । यालागीं शरणागता शरण्य । मीचि एकु ॥ २८८ ॥ मीचि एक अनेकपणें । वेगळालेनि प्रकृतीगुणें । जीत जगाचेनि प्राणें । वर्तत असें ॥ २८९ ॥ जैसा समुद्र थिल्लर न म्हणतां । भलतेथ बिंबे सविता । तैसा ब्रह्मादि सर्वा भूतां । सुहृद तो मी ॥ २९० ॥ मीचि गा पांडवा । या त्रिभुवनासि वोलावा । सृष्टिक्षयप्रभवा । मूळ तें मी ॥ २९१ ॥ बीज शाखांतें प्रसवे । मग तें रूखपण बीजीं सामावे । तैसें संकल्पें होय आघवें । पाठीं संकल्पीं मिळे ॥ २९२ ॥ ऐसें जगाचें बीज जो संकल्पु । अव्यक्त वासनारूपु ।

<<p><</p>
<</p>

<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>
<</p>

<</p>

<

तया कल्पांतीं जेथ निक्षेपु । होय तें स्थान मी ॥ २९३ ॥ इयें नामरूपे लोटती । वर्णव्यक्ती आटती । जातीचे भेद फिटती । जैं आकारू नाहीं ॥ २९४ ॥ तैं संकल्पवासनासंस्कार । माघौतें रचावया चराचर । जेथ राहोनि असती अमर । तें निधान मी ॥ २९५ ॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च । अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९॥

मी सूर्याचेनि वेषें । तपें तें हें शोषे । पाठीं इंद्र होऊनि वर्षें। तैं पुढित भरे ॥ २९६ ॥ अग्नि काष्ठें खाये । तें काष्ठचि अग्नि होये । तैसें मरतें मारितें पाहें । स्वरूप माझें ॥ २९७ ॥ यालागीं मृत्यूच्या भागीं जें जें । तेंही पैं रूप माझें । आणि न मरतें तंव सहजें । मीचि आहें ॥ २९८ ॥ आतां बहु बोलोनि सांगावें । तें एकिहेळां घे पां आघवें । तरी सतासतही जाणावें । मीचि पैं गा ॥ २९९ ॥ म्हणौनि अर्जुना मी नसें। ऐसा कवणु ठाव असे। परि प्राणियांचें दैव कैसें । जे न देखती मातें ॥ ३०० ॥ तरंग पाणियेवीण सुकती । रश्मि वातीवीण न देखती । तैसे मीचि ते मी नव्हती । विस्मो देखें ॥ ३०१ ॥ हें आंतबाहेर मियां कोंदलें । जग निखिल माझेंचि वोतिलें । कीं कैसें कर्म तयां आड आलें। जें मीचि नाहीं म्हणती ॥३०२॥ परि अमृतकुहां पडिजे । कां आपणयांतें कडिये काढिजे । ऐसे आथी काय कीजे । अप्राप्तासी ॥ ३०३ ॥ ग्रासा एका अन्नासाठीं । अंधु धांवताहे किरीटी । आढळला चिंतामणि पायें लोटी । आंधळेपणें ॥ ३०४ ॥ तैसें ज्ञान जैं सांडूनि जाये । तैं ऐसी हे दशा आहे । म्हणौनि कीजे तें केलें नोहे । ज्ञानेंवीण ॥ ३०५ ॥ आंधळेया गरुडाचे पांख आहाती । ते कवणा उपेगा जाती तैसें सत्कर्माचे उपखे ठाती । ज्ञानेंवीण ॥ ३०६ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते । ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥२०॥ देख पां गा किरीटी । आश्रमधर्माचिया राहाटी ।
विधिमार्गां कसवटी । जे आपणचि होती ॥ ३०७ ॥
यजन किरतां कौतुकें । तिहीं वेदांचा माथा तुके ।
क्रिया फळेंसि उभी ठाके । पुढां जयां ॥ ३०८ ॥
ऐसे दीक्षित जे सोमप । जे आपणचि यज्ञाचें स्वरूप ।
तींहीं तया पुण्याचेनि नांवें पाप । जोडिलें देखें ॥ ३०९ ॥
श्रुतित्रयांतें जाणोनी । शतवरी यज्ञ करुनी ।
यजिलिया मातें चुकोनी । स्वर्गा विरती ॥ ३१० ॥
जैसें कल्पतरूतळवटीं । बैसोनि झोळिये देतसे गांठी ।
मग निदैव निघे किरीटी । दैन्यिच करूं ॥ ३११ ॥
तैसे शतक्रतु यजिलें मातें । कीं ईप्सिताित स्वर्गसुखातें ।
आतां पुण्य कीं हें निरुतें । पाप नोहे ॥ ३१२ ॥
म्हणौनि मजवीण पाविजे स्वर्गु । तो अज्ञानाचा पुण्यमार्गु ।

ज्ञानिये तयातें उपसर्गु । हानि म्हणती ॥ ३१३ ॥ ए-हवीं तरी नरकींचें दुःख । पावोनि स्वर्गा नाम कीं सुख । वांचूनि नित्यानंद गा निर्दोख । तें स्वरूप माझें ॥ ३१४ ॥ मज येतां पैं सुभटा । या द्विविधा गा आव्हांटा । स्वर्गु नरकु या वाटा । चोरांचिया ॥ ३१५ ॥ स्वर्गा पुण्यात्मकें पापें येइजे । पापात्मकें पापें नरका जाइजे । मग मातें जेणें पाविजे । तें शुद्ध पुण्य ॥ ३१६ ॥ आणि मजिचमाजीं असतां । जेणें मी दुर्हावें पंडुसुता । तें पुण्य ऐसें म्हणतां । जीभ न तुटे काई ॥ ३१७ ॥ परि हें असो आतां प्रस्तुत । ऐकें यापरि ते दीक्षित । यजूनि मातें याचित । स्वर्गभोगु ॥ ३१८ ॥ मग मी न पविजे ऐसें । जें पापरूप पुण्य असे । तेणें लाधलेनि सौरसें । स्वर्गा येती ॥ ३१९ ॥ जेथ अमरत्व हें सिंहासन । ऐरावतासारिखें वाहन । राजधानीभुवन । अमरावती ॥ ३२० ॥ जेथ महासिद्धींचीं भांडारें । अमृताचीं कोठारें । जिये गांवीं खिल्लारें । कामधेनूंचीं ॥ ३२१ ॥ जेथ वोळगे देव पाइका । सैंघ चिंतामणीचिया भूमिका । विनोदवनवाटिका । सुरतरूंचिया ॥ ३२२ ॥ गंधर्व गात गाणीं । जेथ रंभे ऐसिया नाचणी । उर्वसी मुख्य विलासिनी । अंतौरिया ॥ ३२३ ॥ मदन वोळगे शेजारें । जेथ चंद्र शिपे सांबरें । पवना ऐसे म्हणियारे । धांवणें जेथ ॥ ३२४ ॥

पैं बृहस्पती मुख्य आपण । ऐसे स्वस्तीश्रियेचे ब्राह्मण । ताटियेचे सुरगण । बहुवस जेथें ॥ ३२५ ॥ लोकपाळ रांगेचे । राउत जिये पदवीचे । उच्चै:श्रवा खांचे । खोळणिये ॥ ३२६ ॥ हे असो बहु ऐसे । भोग इंद्रसुखासिरसे । ते भोगिजती जंव असे । पुण्यलेशु ॥ ३२७ ॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति । एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥२१॥

मग तया पुण्याची पाउटी सरे । सर्वेचि इंद्रपणाची उटी उतरे । आणि येऊं लागती माघारे । मृत्युलोका ॥ ३२८ ॥ जैसा वेश्याभोगी कवडा वेंचे । मग दारही चेपूं नये तियेचें । तैसें लाजिरवाणें दीक्षितांचें । काय सांगों ॥ ३२९ ॥ एवं थितिया मातें चुकले । जींहीं पुण्यें स्वर्ग कामिलें । तयां अमरपण तें वावों जालें । अंतीं मृत्युलोकु ॥ ३३० ॥ मातेचिया उदरकुहरीं । पचूनि विष्ठीच्या दाथरीं । उकडूनि नवमासवरी । जन्मजन्मोनि मरती ॥ ३३१ ॥ अगा स्वप्नीं निधान फावे । परि चेइलिया हारपे आघवें । तैसें स्वर्गसुख जाणावें । वेदज्ञाचें ॥ ३३२ ॥ अर्जुना वेदविद जर्ही जाहला । तरी मातें नेणता वायां गेला । कणु सांडूनि उपणिला । कोंडा जैसा ॥ ३३३ ॥ म्हणौनि मज एकेंविण । हे त्रयीधर्म अकारण । आतां मातें जाणोनि कांहीं नेण । तूं सुखिया होसी ॥ ३३४॥ अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥२२॥

पैं सर्वभावेसीं उखितें । जे वोपिलें मज चित्तें । जैसा गर्भगोळु उद्यमातें । कोणाही नेणें ॥ ३३५ ॥ तैसा मीवांचूनि कांहीं। आणीक गोमटेंचि नाहीं। मजिच नाम पाहीं । जिणेंया ठेविलें ॥ ३३६ ॥ ऐसे अनन्यगतिकें चित्तें । चिंतितसांतें मातें । जे उपासिति तयांतें । मीचि सेवीं ॥ ३३७ ॥ ते एकवट्रनि जिये क्षणीं । अनुसरले गा माझिये वाहणीं । तेव्हांचि तयांची चिंतवणी । मजचि पडली ॥ ३३८ ॥ मग तींहीं जें जें करावें । तें मजिच पिडलें आघवें । जैसी अजातपक्षाचेनि जीवें । पक्षिणी जिये ॥ ३३९ ॥ आपुली तहान भूक नेणें । तान्हया निकें तें माउलीसीचि करणें । तैसें अनुसरले जे मज प्राणें । तयांचें सर्व मी करीं ॥३४०॥ तया माझिया सायुज्याची चाड । तरि तेंचि पुरवीं कोड । कां सेवा म्हणती तरी आड । प्रेम सूयें ॥ ३४१ ॥ ऐसा मनीं जो जो धरिती भावो । तो तो पुढां पुढां लागे तयां देवों । आणि दिधलियाचा निर्वाहो । तोही मीचि करीं ॥३४२॥ हा योगक्षेमु आघवा । तयांचा मजिच पडिला पांडवा । जयांचिया सर्वभावा । आश्रयो मी ॥ ३४३ ॥

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधीपूर्वकम् ॥ २३॥

आतां आणिकही संप्रदायें । परी मातें नेणती समवायें । जें अग्निइंद्रसूर्यसोमाये । म्हणौनि यजिती ॥ ३४४ ॥ तेही कीर मातेंचि होये। कां जें हें आघवें मीचि आहें। परि ते भजती उजरी नव्हे । विषम पडे ॥ ३४५ ॥ पाहें पां शाखा पल्लव रुखाचें । हे काय नव्हती एकाचि बीजाचें । परी पाणी घेणें मुळाचें । तें मुळींचि घापे ॥३४६॥ कां दहाही इंद्रियें आहाती । इयें जरी एकेचि देहींचीं होती । आणि इहीं सेविले विषयो जाती । एकाचि ठायीं ॥ ३४७ ॥ तरि करोनि रससोय बरवी । कानीं केवीं भरावी । फुलें आणोनि बांधावीं । डोळां केवीं ॥ ३४८ ॥ तेथ रस् तो मुखेंचि सेवावा । परिमळु तो घ्राणेंचि घ्यावा । तैसा मी तो यजावा । मीचि म्हणौनि ॥ ३४९ ॥ येर मातें नेणोनि भजन । तें वायांचि गा आनेंआन । म्हणौनि कर्माचे डोळे ज्ञान । तें निर्दोष होआवें ॥ ३५० ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च । न तु मामभिजान्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४॥

ए-हवीं पाहे पां पंडुसुता । या यज्ञोपहारां समस्तां ।

मीवांचूिन भोक्ता । कवणु आहे ॥ ३५१ ॥

मी सकळां यज्ञांचा आदि । आणि यजना या मीचि अवधि ।

कीं मातें चुकोनि दुर्बुद्धि । देवां भजले ॥ ३५२ ॥

गंगेचें उदक गंगें जैसें । अर्पिजे देविपतरोद्देशें ।

माझें मज देती तैसें । परि आनानीं भावी ॥ ३५३ ॥

म्हणौनि ते पार्था । मातें न पवतीचि सर्वथा । मग मनीं वाहिली जे आस्था । तेथ आले ॥ ३५४ ॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रता । भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५॥

मनें वाचा करणीं । जयांचीं भजनें देवांचिया वाहणीं । ते शरीर जातिये क्षणीं । देवचि जाले ॥ ३५५ ॥ अथवा पितरांचीं व्रतें । वाहती जयांचीं चित्तें । जीवित सरिलया तयांतें । पितृत्व वरी ॥ ३५६ ॥ कां क्षुद्रदेवतादि भूतें । तियेचि जयांचि परमदैवतें । जिहीं अभिचारिकीं तयांतें । उपासिलें ॥ ३५७ ॥ तयां देहाची जवनिका फिटली । आणि भूतत्वाची प्राप्ती जाहली । एवं संकल्पवशें फळलीं । कर्में तयां ॥ ३५८ ॥ मग मीचि डोळां देखिला । जिहीं कानीं मीचि ऐकिला । मीचि मनीं भविला । वानिला वाचा ॥ ३५९ ॥ सर्वांगीं सर्वांठायीं । मीचि नमस्करिला जिहीं । दानपुण्यादिकें जें कांहीं । तें माझियाचि मोहरां ॥ ३६० ॥ जिहीं मातेंचि अध्ययन केलें । जे आंतबाहेरि मियांचि धाले । जयांचें जीवित्व जोडलें । मजिचलागीं ॥ ३६१ ॥ जे अहंकारु वाहत आंगीं । आम्ही हरीचे भूषावयालागीं । जे लोभिये एकचि जगीं। माझेनि लोभें॥ ३६२॥ जे माझेनि कामें सकाम । जे माझेनि प्रेमें सप्रेम । जे माझिया भुली सभ्रम । नेणती लोक ॥ ३६३ ॥

जयांचीं जाणती मजिच शास्त्रें। मी जोडें जयांचेनि मंत्रें। ऐसें जे चेष्टामात्रें। भजले मज॥ ३६४॥ ते मरणा ऐलीचकडे । मज मिळोनि गेले फुडे । मग मरणीं आणिकीकडे । जातील केवीं ॥ ३६५ ॥ म्हणौनि मद्याजी जे जाहाले । ते माझियाचि सायुज्या आले । जिहीं उपचारिमषें दिधलें । आपणपें मज ॥ ३६६ ॥ पैं अर्जुना माझे ठायीं । आपणपेंवीण सौरसु नाहीं । मी उपचारं कवणाही । नाकळें गा ॥ ३६७ ॥ एथ जाणीव करी तोचि नेणें। आथिलेंपण मिरवी तेंचि उणें । आम्ही जाहलों ऐसें जो म्हणे । तो कांहींचि नव्हे ॥ ३६८ ॥ अथवा यज्ञदानादि किरीटी । कां तपें हन जे हुटहुटी । ते तृणा एकासाठीं । न सरे एथ ॥ ३६९ ॥ पाहें पां जाणिवेचेनि बळें। कोण्ही वेदांपासूनि असे आगळें । कीं शेषाहृनि तोंडाळें । बोलकें आथी ॥ ३७० ॥ तोही आंथरुणातळवटीं दडे । येरु नेति नेति म्हणौनि बहुडे । एथ सनकादिक वेडे । पिसे जाहले ॥ ३७१ ॥ करितां तापसांची कडसणी । कवणु जवळां ठेविजे शूळपाणी । तोही अभिमानु सांडूनि पायवणी । माथां वाहे ॥ ३७२ ॥ नातरी आथिलेपणें सरिशी । कवणी आहे लक्ष्मिये ऐसी श्रियेसारिखिया दासी । घरीं जियेतें ॥ ३७३ ॥ तिया खेळतां करिती घरकुलीं । तयां नामें अमरपुरें जरी ठेविलीं । तरि न होती काय बाहुलीं । इंद्रादिक तयांचीं ॥३७४॥ तिया नावडोनि जेव्हां मोडिती । तेव्हां महेंद्राचे रंक होती ।

तिया झाडा जेउते पाहती । ते कल्पवृक्ष ॥ ३७५ ॥
ऐसिया जियेचिया जवळिका । सामर्थ्य घरींचिया पाइका ।
ते लक्ष्मी मुख्यनायका । न मनेचि एथ ॥ ३७६ ॥
मग सर्वस्वें करूनि सेवा । अभिमानु सांडूनि पांडवा ।
ते पाय धुवावयाचिया दैवा । पात्र जाहाली ॥ ३७७ ॥
म्हणौनि थोरपण पर्हां सांडिजे । एथ व्युत्पत्ति आघवी विसरिजे
। जैं जगा धाकुटें होईजे । तैं जवळीक माझी ॥३७८॥
अगा सहस्रकिरणांचिये दिठी- । पुढां चंद्रही लोपे किरीटी ।
तेथ खद्योत कां हुटहुटी । आपुलेनि तेजें ॥ ३७९ ॥
तैसें लिक्ष्मयेचें थोरपण न सरे । जेथ शंभूचेंही तप न पुरे ।
तेथ येर प्राकृत हेंदरें । केवीं जाणों लाहे ॥ ३८० ॥
यालागीं शरीरसांडोवा कीजे । सकळ गुणांचें लोण उतरिजे ।
संपत्तिमदु सांडिजे । कुरवंडी करुनी ॥ ३८१ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६॥

मग निस्सीमभाव उल्हासें । मज अर्पावयाचेनि मिसें । फळ आवडे तैसें । भलतयाचें हो ॥ ३८२ ॥ भक्तु माझियाकडे दावी । आणि मी दोन्हीं हात वोडवीं । मग देंठु न फेडितां सेवीं । आदरेंशी ॥ ३८३ ॥ पैं गा भक्तीचेनि नांवें । फूल एक मज द्यावें । तें लेखें तिर म्यां तुरंबावें । पिर मुखींचि घालीं ॥ ३८४ ॥ हें असो कायसीं फुलें । पानचि एक आवडे तें जाहलें ।

तें साजुकही न हो सुकलें । भलतैसें ॥ ३८५ ॥ परि सर्वभावें भरलें देखें । आणि भुकेला अमृतें तोखें । तैसें पत्रचि परि तेणें सुखें । आरोगूं लागें ॥ ३८६ ॥ अथवा ऐसेंहीं एक घडे । जे पालाही परी न जोडे । तिर उदकाचें तंव सांकडें । नव्हेल कीं ॥ ३८७ ॥ तें भलतेथ निमोलें । न जोडितां आहे जोडलें । तेंचि सर्वस्व करूनि अर्पिलें । जेणें मज ॥ ३८८ ॥ तेणें वैकुंठांपासोनि विशाळें । मजलागीं केली राऊळें । कौस्तुभाहोनि निर्मळें । लेणीं दिधलीं ॥ ३८९ ॥ दुधाचीं सेजारें । क्षीराब्धी ऐसीं मनोहरें । मजलागीं अपारें । सृजिलीं तेणें ॥ ३९० ॥ कर्पूर चंदन अगरु । ऐसेया सुगंधाचा महामेरु । मज हातीवा लाविला दिनकरु । दीपमाळे ॥ ३९१ ॥ गरुडासारिखीं वाहनें । मज सुरतरूंचीं उद्यानें । कामधेनूंचीं गोधनें । अर्पिलीं तेणें ॥ ३९२ ॥ मज अमृताहृनि सुरसें । बोनीं वोगरिली बहुवसें । ऐसा भक्तांचेनि उदकलेशें । परितोषें गा ॥ ३९३ ॥ हें सांगावें काय किरीटी । तुवांचि देखिलें आपुलिया दिठी । मी सुदामाचिया सोडीं गांठीं । पव्हयांलागीं ॥ ३९४ ॥ पैं भक्ति एकी मी जाणें। तथ सानें थोर न म्हणे। आम्ही भावाचे पाहुणे । भलतेया ॥ ३९५ ॥ येर पत्र पुष्प फळ । हें भजावया मिस केवळ । वांचूनि आमुचा लाग निष्कळ । भक्तितत्त्व ॥ ३९६ ॥

म्हणौनि अर्जुना अवधारीं । तूं बुद्धी एकी सोपारी करीं । तरि सहजें आपुलिया मनोमंदिरीं । न विसंबें मातें ॥ ३९७ ॥

<\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$><\$>

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७॥

जे जे कांहीं व्यापार किरसी । कां भोग हन भोगिसी । अथवा यज्ञीं यजिसी । नानाविधीं ॥ ३९८ ॥ नातरी पात्रविशेषें दानें । कां सेवकां देसी जीवनें । तपादि हन साधनें । व्रतें किरसी ॥ ३९९ ॥ तें क्रियाजात आघवें । जें जैसें निपजेल स्वभावें । तें भावना करोनि करावें । माझिया मोहरा ॥ ४०० ॥ पिर सर्वथा आपुले जीवीं । केलियाची से कांहींचि नुरवीं । ऐसीं धुवोनि कर्में द्यावीं । माझियां हातीं ॥ ४०१ ॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै: । संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८॥

मग अग्निकुंडीं बीजें घातलीं । तियें अंकुरदशे जेवीं मुकलीं । तेवीं न फळतीचि मज अर्पिलीं । शुभाशुभें ॥ ४०२ ॥ अगा कमेंं जैं उरावें । तैं तिहीं सुखदुःखीं फळावें । आणि तयातें भोगावया यावें । देहा एका ॥ ४०३ ॥ ते उगाणिलें मज कर्म । तेव्हांचि पुसिलें मरण जन्म । जन्मासवें श्रम । वरचिलही गेले ॥ ४०४ ॥ म्हणौनि अर्जुना यापरी । पाहेचा वेळु नव्हेल भारी । हे संन्यासयुक्ति सोपारी । दिधली तुज ॥ ४०५ ॥ या देहाचिया बांदोडी न पडिजे । सुखदुःखांचियां सागरीं न बुडिजे । सुखें सुखरूपा घडिजे । माझियाचि आंगा ॥४०६॥

समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्यो~स्ति न प्रियः । ये भजन्ति तु मां भक्त्या मिय ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९॥ तो मी पुससी कैसा । तरि जो सर्वभूतीं सदा सरिसा । जेथ आपपरु ऐसा । भागु नाहीं ॥ ४०७ ॥ जे ऐसिया मातें जाणोनि । अहंकाराचा कुरुठा मोडोनि । जे जीवें कर्में करूनि । मातें भजलें ॥ ४०८ ॥ ते वर्तत दिसती देहीं । परि ते देहीं ना माझ्या ठायीं । आणि मी तयांच्या हृदयीं । समग्र असे ॥ ४०९ ॥ सविस्तर वटत्व जैसें । बीजकणिकेमाजीं असे । आणि बीजकणु वसे । वटीं जेवीं ॥ ४१० ॥ तेवीं आम्हां तयां परस्परें । बाहेरी नामाचींचि अंतरें । वांचूनि आंतुवट वस्तुविचारें। मी तेचि ते॥ ४११॥ आतां जायांचें जैसें लेणें । आंगावरी आहाचवाणें । तैसें देहधरणें । उदास तयांचें ॥ ४१२ ॥ परिमळु निघालिया पवनापाठीं । मागें वोस फूल राहे देंठीं । तैसें आयुष्याचिये मुठी । केवळ देह ॥ ४१३ ॥ येर अवष्टंभु जो आघवा । तो आरूढोनि मद्भावा । मजिच आंतु पांडवा । पैठा जाहला ॥ ४१४ ॥

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३०॥

ऐसे भजतेनि प्रेमभावें । जयां शरीरही पाठीं न पवे । तेणें भलतया व्हावें । जातीचिया ॥ ४१५ ॥ आणि आचरण पाहतां सुभटा । तो दुष्कृताचा कीर सेल वांटा । परि जीवित वेंचिलें चोहटां । भक्तीचिया कीं ॥४१६॥ अगा अंतींचिया मती । साचपण पुढिले गती । म्हणौनि जीवित जेणें भक्ती । दिधलें शेखीं ॥ ४१७ ॥ तो आधीं जरी दुराचारी । तरी सर्वोत्तमुचि अवधारीं । जैसा बुडाला महापुरीं । न मरतु निघाला ॥ ४१८ ॥ तयाचें जीवित ऐलथडिये आलें। म्हणौनि बुडालेपण जेवीं वायां गेलें । तेवीं नुरेचि पाप केलें । शेवटलिये भक्ती ॥४१९॥ यालागीं दुष्कृती जर्ही जाहाला । तरी अनुतापतीर्थीं न्हाला । न्हाऊनि मजआंतु आला । सर्वभावें ॥ ४२० ॥ तरी आतां पवित्र तयाचेंचि कुळ । अभिजात्य तेंचि निर्मळ । जन्मलेयाचें फळ । तयासीच जोडलें ॥ ४२१ ॥ तो सकळही पढिन्नला । तपें तोचि तपिन्नला । अष्टांग अभ्यासिला । योगु तेणें ॥ ४२२ ॥ हें असो बहुत पार्था। तो उतरला कर्में सर्वथा। जयाची अखंड गा आस्था । मजिचलागीं ॥ ४२३ ॥ अविधया मनोबुद्धीचिया राहटी । भरोनि एकनिष्ठेची पेटी । मजमाजीं किरीटी । निक्षेपिलीं जेणें ॥ ४२४ ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति । कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१॥

तो आतां अवसरें मजसारिखा होईल । ऐसा हन भाव तुज जाईल । हां गा अमृताआंत राहील । तया मरण कैचें ॥४२५॥ पैं सूर्यु जो वेळु नुदैजे । तया वेळा कीं रात्रि म्हणिजे । तेवीं माझिये भक्तीविण जें कीजे । तें महापाप नोहें ॥४२६॥ म्हणौनि तयाचिया चित्ता । माझी जवळिक पंडुसुता । तेव्हांचि तो तत्त्वता । स्वरूप माझें ॥ ४२७ ॥ जैसा दीपें दीपु लाविजे । तथ आदील कोण हें नोळखिजे । तैसा सर्वस्वें जो मज भजे । तो मीचि होऊनि ठाके ॥४२८॥ मग माझी नित्य शांती । तया दशा तेचि कांती । किंबहुना जिती । माझेनि जीवें ॥ ४२९ ॥ एथ पार्था पुढतपुढती । तेंचि तें सांगों किती । जरी मियां चाड तरी भक्ती । न विसंबिजे गा ॥ ४३० ॥ अगा कुळाचिया चोखटपणा नलगा । आभिजात्य झणीं श्लाघा । व्युत्पत्तीचा वाउगा । सोसु कां वहावा ॥ ४३१ ॥ कां रूपवयसा माजा । आथिलेपणें कां गाजा एक भाव नाहीं माझा । तरी पाल्हाळ तें ॥ ४३२ ॥ कणेंविण सोपटें। कणसें लागलीं घनदाटें। काय करावें गोमटें । वोस नगर ॥ ४३३ ॥ नातरी सरोवर आटलें। रानीं दुःखिया दुःखी भेटलें। कां वांझ फुलीं फुललें । झाड जैसें ॥ ४३४ ॥ तैसें सकळ तें वैभव । अथवा कुळ जाति गौरव ।

जैसें शरीर आहे सावेव । परि जीवचि नाहीं ॥ ४३५ ॥ तैसें माझिये भक्तीविण । जळो तें जियालेंपण अगा पृथ्वीवरी पाषाण । नसती काईं ॥ ४३६ ॥ पैं हिंवराची दाट साउली । सज्जनीं जैसी वाळिली । तैसीं पुण्यें डावलूनि गेलीं । अभक्तांतें ॥ ४३७ ॥ निंब निंबोळियां मोडोनि आला । तरी तो काउळियांसीचि सुकाळु जाहला । तैसा भक्तिहीनु वाढिन्नला । दोषांचिलागीं ॥४३८॥ कां षड्रस खापरीं वाढिले । वाढूनि चोहटां ठेविले । ते सुणियांचेचि ऐसे झाले । जियापरी ॥ ४३९ ॥ तैसें भक्तिहीनाचें जिणें। जो स्वप्नींहि परि सुकृत नेणे। संसारदु:खासि भाणें । वोगरिलें ॥ ४४० ॥ म्हणौनि कुळ उत्तम नोहावें। जाती अंत्यजिह व्हावें। वरि देहाचेनि नांवें । पशूचेंहि लाभो ॥ ४४१ ॥ पाहें पां सावजें हातिरूं धरिलें । तेणें तया काकुळती मातें स्मरिलें । कीं तयाचें पशुत्व वावो जाहलें । पावलिया मातें ॥४४२॥

<</p>

<</p>

<

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य ये~िप स्युः पापयोनयः ॥ स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्ते~िप यान्ति परां गतिम् ॥ ३२॥ अगा नांवें घेतां वोखटीं । जे आघवेया अधमांचिये शेवटीं । तिये पापयोनींही किरीटी । जन्मले जे ॥ ४४३ ॥ ते पापयोनि मूढ । मूर्ख जैसे कां दगड । परि माझ्यां ठायीं दृढ । सर्वभावें ॥ ४४४ ॥ जयांचिये वाचें माझे आलाप । दृष्टी भोगी माझेंचि रूप । जयांचें मन संकल्प । माझाचि वाहे ॥ ४४५ ॥

माझिया कीर्तीविण । जयांचे रिते नाहीं श्रवण । जयां सर्वांगीं भूषण । माझी सेवा ॥ ४६ ॥ जयांचे ज्ञान विषो नेणे । जाणीव मज एकातेंचि जाणे । जया ऐसें लाभे तरी जिणें। ए-हवीं मरण ॥ ४४७ ॥ ऐसा आघवाचि परी पांडवा । जिहीं आपुलिया सर्वभावा । जियावयालागीं वोलावा । मीचि केला ॥ ४४८ ॥ ते पापयोनीही होतु कां । ते श्रुताधीतही न होतु कां । परि मजसीं तुकितां तुकां । तुटी नाहीं ॥ ४४९ ॥ पाहें पां भक्तीचेनि आथिलेपणें । दैत्यीं देवां आणिलें उणें । माझें नृसिंहत्व लेणें । जयाचिये महिमें ॥ ४५० ॥ तो प्रल्हादु गा मजसाठीं । घेतां बहुतें संकटे सदा किरीटी । कां जें मियां द्यावें ते गोष्टी । तयाचिया जोडे ॥ ४५१ ॥ ए-हवीं दैत्यकुळ साचोकारें । परि इंद्रही सरी न लाहे उपरें । म्हणौनि भक्ति गा एथ सरे । जाति अप्रमाण ॥ ४५२ ॥ राजाज्ञेचीं अक्षरें आहाती । तियें चामा एका जया पडती । तया चामासाठीं जोडती । सकळ वस्तु ॥ ४५३ ॥ वांचूनि सोनें रुपें प्रमाण नोहे । एथ राजाज्ञाचि समर्थ आहे । तेंचि चाम एक जैं लाहे । तेणें विकती आघवीं ॥ ४५४ ॥ तैसें उत्तमत्व तैंचि तरे । तैंचि सर्वज्ञता सरे । जैं मनोबुद्धि भरे । माझेनि प्रेमें ॥ ४५५ ॥ म्हणौनि कुळ जाति वर्ण । हें आघवेंचि गा अकारण । एथ अर्जुना माझेपण । सार्थक एक ॥ ४५६ ॥ तेंचि भलतेणें भावें । मन मज आंतु येतें होआवें ।

<</p>

<

आलें तरी आघवें । मागील वावो ॥ ४५७ ॥ जैसें तंवचि वहाळ वोहळ । जंव न पवती गंगाजळ । मग होऊनि ठाकती केवळ । गंगारूप ॥ ४५८ ॥ कां खैर चंदन काष्ठें । हे विवंचना तंवचि घटे । जंव न घापती एकवटे । अग्नीमाजीं ॥ ४५९ ॥ तैसे क्षत्री वैश्य स्त्रिया । कां शूद्र अंत्यजादि इया । जाती तंवचि वेगळालिया । जंव न पवती मातें ॥ ४६० ॥ मग जाती व्यक्ती पडे बिंदुलें। जेव्हां भावें होती मज मीनलें । जैसे लवणकण घातले । सागरामाजीं ॥ ४६१ ॥ तंववरी नदानदींचीं नांवें । तंवचि पूर्वपश्चिमेचे यावे । जंव न येती आघवे । समुद्रामाजीं ॥ ४६२ ॥ हेंचि कवणें एकें मिसें। चित्त माझे ठायीं प्रवेशे। येतुलें हो मग आपैसें । मीचि होणें असे ॥ ४६३ ॥ अगा वरी फोडावयाचि लागीं। लोहो मिळो कां परिसाचे आंगीं। कां जे मिळतिये प्रसंगी। सोनेंचि होईल॥ ४६४॥ पाहें पां वालभाचेनि व्याजें । तिया व्रजांगनांचीं निजें । मज मीनलिया काय माझें । स्वरूप नव्हती ॥ ६५ ॥ नातरी भयाचेनि मिसें। मातें न पविजेचि काय कंसें। कीं अखंड वैरवशें । चैद्यादिकीं ॥ ४६६ ॥ अगा सोयरेपणेंचि पांडवा । माझें सायुज्य यादवां । कीं ममत्वें वसुदेवा- । दिकां सकळां ॥ ४६७ ॥ नारदा ध्रुवा अक्रूरा । शुका हन सनत्कुमारा । यां भक्तीं मी धनुर्धरा । प्राप्यु जैसा ॥ ४६८ ॥

}><\\\}><\\\}><\\\}><\\\}><\\\}><\\\}><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\\$><\\\$><\\\$\$

तैसाचि गोपीकांसि कामें । तया कंसा भयसंभ्रमें ।
येरां घातकां मनोधमें । शिशुपालादिकां ॥ ४६९ ॥
अगा मी एकुलाणीचें खागें । मज येवों पां भलतेनि मार्गें ।
भक्ती कां विषयविरागें । अथवा वैरें ॥ ४७० ॥
म्हणौनि पार्था पाहीं । प्रवेशावया माझ्या ठायीं ।
उपायांची नाहीं । वाणी एथ ॥ ४७१ ॥
आणि भलतिया जातीं जन्मावें । मग भिजजे कां विरोधावें ।
पिर भक्त कां वैरिया व्हावें । माझियाचि ॥ ४७२ ॥
अगा कवणें एकें बोलें । माझेपण जर्ही जाहालें ।
तरी मी होणें आलें । हाता निरुतें ॥ ४७३ ॥
यालागीं पापयोनीही अर्जुना । कां वैश्य शूद्र अंगना ।
मातें भजतां सदना । माझिया येती ॥ ४७४ ॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा । अनित्यमसुखं लोकिममं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३॥

मग वर्णांमाजीं छत्रचामर । स्वर्ग जयांचें अग्रहार । मंत्रविद्येसि माहेर । ब्राह्मण जे ॥ ४७५ ॥ जे पृथ्वीतळींचें देव । जे तपोवतार सावयव । सकळ तीर्थांसि दैव । उदयलें जें ॥ ४७६ ॥ जेथ अखंड विसजे यागीं । जे वेदांची वज्रांगी । जयांचेनि दिठीचिया उत्संगीं । मंगळ वाढे ॥ ४७७॥ जयांचिये आस्थेचेनि वोलें । सत्कर्म पाल्हाळीं गेलें । संकल्पें सत्य जियालें । जियांचेनि ॥ ४७८ ॥

जयांचेनि गा बोलें। अग्नीसि आयुष्य जाहालें। म्हणौनि समुद्रें पाणी आपुलें । दिधलें यांचिया प्रीती ॥४७९॥ मियां लक्ष्मी डावलोनि केली परौती । फेडोनि कौस्तुभ घेतला हातीं । मग वोढविली वक्षस्थळाची वाखती । चरणरजां ॥४८०॥ आझुनि पाउलाची मुद्रा । मी हृदयीं वाहें गा सुभद्रा । जे आपुलिया दैवसमुद्रा । जतनेलागीं ॥ ४८१ ॥ जयांचा कोप सुभटा । काळाग्निरुद्राचा वसौटा । जयांचे प्रसादीं फुकटा । जोडती सिद्धी ॥ ४८२ ॥ ऐसे पुण्यपूज्य जे ब्राह्मण । आणि माझ्या ठायीं अतिनिपुण आतां मातें पावती हे कवण । समर्थावें ॥ ४८३ ॥ पाहें पां चंदनाचेनि अंगानिळें। शिवतिले निंब होते जे जवळें । तिहीं निर्जिवींही देवांचीं निडळें । बैसणीं केलीं ॥ ४८४ ॥ मग तो चंदन तथ न पवे । ऐसें मनीं कैसेनि धरावें । अथवा पातला हें समर्थावें । तेव्हां कायी साच ॥ ४८५ ॥ जेथ निववील ऐशिया आशा । हरें चंद्रमा आधा ऐसा । वाहिजत असे शिरसा । निरंतर ॥ ४८६ ॥ तेथ निवविता आणि सगळा । परिमळें चंद्राहूनि आगळा । तो चंदनु केवीं अवलीळा । सर्वांगीं न बैसे ॥ ४८७ ॥ कां रथ्योदकें जियेचिये कासे । लागलिया समुद्र जालीं अनायासें । तिये गंगेसि काय अनारिसें । गत्यंतर असे ॥४८८॥ म्हणौनि राजर्षि कां ब्राह्मण । जयां गति मति मीचि शरण्य । तयां त्रिशुद्धी मीच निर्वाण । स्थितीही मीचि ॥ ४८९ ॥ यालागीं शतजर्जर नावें । रिगोनि केवीं निश्चित होआवें ।

<</p>

<

कैसेनि उघडिया असावें । शस्त्रवर्षीं ॥ ४९० ॥ आंगावरी पडतां पाषाण । न सुवावें केवीं वोडण । रोगें दाटला आणि उदासपण । वोखदेंसी ॥ ४९१ ॥ जेथ चहुंकडे जळत वणवा । तेथूनि न निगिजे केवीं पांडवा । तेवीं लोकां येऊनि सोपद्रवां । केवीं न भजिजे मातें ॥४९२॥ अगा मातें न भजावयालागीं । कवण बळ पां आपुलिया आंगीं। काई घरीं कीं भोगी। निश्चिती केलीं ॥ ४९३॥ नातरी विद्या कीं वयसा । ययां प्राणियांसि हा ऐसा । मज न भजतां भरंवसा । सुखाचा कोण ॥ ४९४ ॥ तरी भोग्यजात जेतुलें । तें एका देहाचिया निकिया लागलें । आणि एथ देह तंव असे पडिलें। काळाचिये तोंडीं ॥४९५॥ बाप दुःखाचें केणें सुटलें । जेथ मरणाचे भरे लोटले । तिये मृत्युलोकींचिये शेवटिलें । येणें जाहालें हाटवेळे ॥४९६॥ आंता सुखेंसि जीविता । कैंचीं ग्राहिकी किजेल पंडुसुता । काय राखोंडी फुंकितां । दीपु लागे ॥ ४९७ ॥ अगा विषाचे कांदे वाटुनी । जो रसु घेईजे पिळुनी । तया नाम अमृत ठेवुनी । जैसें अमर होणें ॥ ४९८ ॥ तेवीं विषयांचें जें सुख । तें केवळ परम दुःख । परि काय कीजे मूर्ख । न सेवितां न सरे ॥ ४९९ ॥ कां शीस खांडूनि आपुलें। पायींच्या खतीं बांधिलें। तैसें मृत्युलोकींचें भलें। आहे आघवें॥ ५००॥ म्हणौनि मृत्युलोकीं सुखाची कहाणी । ऐकिजेल कवणाचिये श्रवणीं । कैंची सुखनिद्रा अंथरुणीं । इंगळांच्या ॥ ५०१ ॥

\$><\$><\$><\$><\$><\$>><\$>

जिये लोकींचा चंद्र क्षयरोगी । जेथ उदयो होय अस्तालागीं । दुःख लेऊनि सुखाची आंगीं । सळित जगातें ॥ ५०२ ॥ जेथ मंगळाचिया अंकुरीं । सर्वेचि अमंगळाची पडे पोहरी । मृत्यु उदराचिया परिवरी । गर्भु गिंवसी ॥ ५०३ ॥ जें नाहीं तयातें चिंतवी । तंव तेंचि नेइजे गंधवीं । गेलियाची कवणें गांवीं । शुद्धी न लगे ॥ ५०४ ॥ अगा गिंवसितां आघविया वाटी । परतलें पाऊलचि नाहीं किरीटी । सैंघ निमालियांचिया गोठी । तियें पुराणें जेथिंचीं ॥५०५॥ जेथिंचिये अनित्यतेची थोरी । करितया ब्रह्मयाचे आयुष्यवेरी । कैसें नाहीं होणें अवधारीं । निपटूनियां ॥ ५०६ ॥ ऐसी लोकींची जिये नांदणुक । तेथ जन्मले आथि जे लोक । तयांचिये निश्चिंतीचें कौतुक । दिसत असे ॥ ५०७ ॥ पैं दृष्टादृष्टाचिये जोडी- । लागीं भांडवल न सुटे कवडी । जेथ सर्वस्वें हानि तेथ कोडी । वेंचिती गा ॥ ५०८ ॥ जो बहुवें विषयविलासें गुंफे । तो म्हणती उवाईं पडिला सापें । जो अभिलाषभारें दडपे । तयातें सज्ञान म्हणती ॥ ५०९ ॥ जयाचें आयुष्य धाकुटें होय । बळ प्रज्ञा जिरौनि जाय । तयाचे नमस्कारिती पाय । वडील म्हणुनी ॥ ५१० ॥ जंव जंव बाळ बळिया वाढे । तंव तंव भोजे नाचती कोडें । आयुष्य निमालें आंतुलियेकडे । ते ग्लानीचि नाहीं ॥ ५११ ॥ जन्मलिया दिवसदिवसें । हों लागे काळाचेंचि ऐसें । कीं वाढती करिती उल्हासें । उभिवती गुढिया ॥ ५१२ ॥ अगा मर हा बोलु न साहती । आणि मेलिया तरी रडती ।

परि असतें जात न गणिती । गहिंसपणें ॥ ५१३ ॥ दर्दूर सापें गिळिजतु आहे उभा । कीं तो मासिया वेंटाळी जिभा । तैसें प्राणिये कवणा लोभा । वाढिवती तृष्णा ॥५१४॥ अहा कटकटा हें वोखटें । इये मृत्युलोकींचें उफराटें । एथ अर्जुना जरी अवचटें । जन्मलासी तूं ॥ ५१५ ॥ तिर झडझडोनि वहिला निघ । इये भक्तीिचये वाटे लाग । जिया पावसी अव्यंग । निजधाम माझें ॥ ५१६ ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

तूं मन हें मीचि करीं । माझिया भजनीं प्रेम धरीं ।
सर्वत्र नमस्कारीं । मज एकातें ॥ ५१७ ॥
माझेनि अनुसंधानें देख । संकल्पु जाळणें निःशेख ।
मद्याजी चोख । याचि नांव ॥ ५१८ ॥
ऐसा मियां आथिला होसी । तेथ माझियाचि स्वरूपा पावसी । हें अंतःकरणींचें तुजपासीं । बोलिजत असें ॥ ५१९ ॥ अगा अविधया चोरिया आपुलें । जें सर्वस्व आम्हीं असें ठेविलें । तें पावोनि सुख संचलें । होऊनि ठासी ॥ ५२० ॥ ऐसें सांवळेनि परब्रह्में । भक्तकामकल्पद्रुमें । बोलिलें आत्मारामें । संजयो म्हणे ॥ ५२१ ॥ अहो ऐकिजत असें कीं अवधारा । तंव इया बोला निवांत

म्हातारा । जैसा म्हैसा नुठी कां पुरा । तैसा उगाचि असे ॥५२२॥ तेथ संजयें माथा तुकिला । अहा अमृताचा पाऊस वर्षला । कीं हा एथ असतुचि गेला । सेजिया गांवा ॥ ५२३ ॥ त-ही दातारु हा आमुचा । म्हणौनि हें बोलतां मैळेल वाचा । काय कीजे ययाचा । स्वभावोचि ऐसा ॥ ५२४ ॥ परि बाप भाग्य माझें । जे वृत्तांतु सांगावयाचेनि व्याजें । कैसा रिक्षलों मुनिराजें । श्रीव्यासदेवें ॥ ५२५ ॥ येतुलें हें वाड सायासें । जंव बोलत असे दृढमानसें । तंव न धरवेचि आपुलिया ऐसें । सात्त्विकं केलें ॥ ५२६ ॥ चित्त चाकाटलें आटु घेत । वाचा पांगुळली जेथिंची तेथ । आपाद कंचुकित । रोमांच आले ॥ ५२७ ॥ अर्धोन्मीलित डोळे । वर्षताति आनंदजळें । आंतुलिया सुखोर्मींचेनि बळें । बाहेरी कांपे ॥ ५२८ ॥ पैं आघवाचि रोममूळीं । आली स्वेदकणिका निर्मळी । लेइला मोतियांची कडियाळीं । आवडे तैसा ॥ ५२९ ॥ ऐसा महासुखाचेनि अतिरसें । जेथ आटणी हों पाहे जीवदशे । तेथ निरोपिलें व्यासें । तें नेदीच हों ॥ ५३० ॥ आणिक श्रीकृष्णाचें बोलणें । घोकरी आलें श्रवणें । कीं देहस्मृतीचा तेणें । वापसा केला ॥ ५३१ ॥ तेव्हां नेत्रींचें जळ विसर्जी । सर्वांगींचा स्वेदु परिमार्जीं । तेवींचि अवधारा म्हणे हो जी । धृतराष्ट्रातें ॥ ५३२ ॥ आतां श्रीकृष्णवाक्यबीजा निवाडु । आणि संजय सात्त्विकाचा बिवडु । म्हणौनि श्रोतयां होईल सुरवाडु । प्रमेय पिकाचा ॥५३३॥

अहो अळुमाळ अवधान देयावें । येतुलेनि आनंदाचे राशीवरी बैसावें । बाप श्रवणेंद्रिया दैवें । घातली माळ ॥ ५३४ ॥ म्हणौनि विभूतींचा ठावो । अर्जुना दावील सिद्धांचा रावो । तो ऐका म्हणे ज्ञानदेवो । निवृत्तीचा ॥ ५३५ ॥

इति श्रीज्ञानदेवविरचितायां भावार्थदीपिकायां नवमोऽध्यायः ॥

॥ रामकृष्णहरि ॥ सेवाभावी संतचरणरज बाळकृष्ण प्रकाश कदम जय हरि सांस्कृतीक प्रतिष्ठान, सोलापूर (इतर PDF ग्रंथासाठी संपर्क - ९७६५६५३८०५) ****